विद्या सक्सेना

परिचय

नाम:—विद्या सक्सेना

पिता का नाम:- स्व० श्रीयुत लाला सहाय जी सक्सेना, प्राध्यापक गवर्नमेन्ट कालेज फर्रुखाबाद

अग्रज:- डा० एस०सी०चित्रे, डी० लिट० चुन्नीगंज कानपुर।

पति:-श्री राधेश्याम जी प्रधान

जन्मतिथि:-२८-४-१९२४

जन्म स्थान:—फर्रुखाबाद

सन् १९३८ से लेखन प्रारम्भ. १९३८ में प्रथम बार श्रीयुत गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' की अध्यक्षता में काव्य पाठ तथा सनेहीजी द्वारा आजीवन 'सुकवि' मासिक पत्रिका का दान प्राप्त।

सन् १९३९ में सुकवि पुरस्कार 'श्री हरनाथपदक' द्वारा पुरस्कृत।

सन् १९३९ में पिंगलाचार्य कविवर 'वचनेश' जी द्वारा स्वर्ण पदक से सम्मानित।

सन् १९५९ में प्रथम काव्य संग्रह 'जीवन तरवि' का प्रकाशन तथा पंचायत राज्य द्वारा समस्त उत्तरप्रदेश की पंचायत पुस्तकालयों के लिये पुस्तक की स्वीकृति।

सन् १९७५ (महिला वर्ष) में साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन में प्रशस्तिपत्र द्वारा सम्मानित

राजपाल एण्ड सन्स में प्रकाशित श्री क्षेम चन्द्र 'सुमन' द्वारा संग्रहीत "आधुनिक कवयित्रियों के प्रेम गीत" में कविता तथा परिचय।

पीड़ा

आकाश काँप उठता है,
धरती धीरज खोती है।
जब कभी-कभी अनजानें,
पीड़ा मुखरित होती है।

विद्या सक्सेना

महिमामयी महादेवी जी के प्रति

नारी के मन की ममता,
कविता की जीवित आशा।
साकार मूर्ति पीड़ा की,
मानवता की परिभाषा।

हे महादेवि करती हूँ,
पीड़ा का तुम्हें समर्पण
है साध अमर हो जाये,
मेरे जीवन का यह क्षण

विद्या सक्सेना

भूमिका

मनोविज्ञान ने बड़ी गहराइयों में उतर कर मनोवेदनानुशीलन प्रणालियाँ आविष्कृत की हैं—इरोस और थेनोप्येस, टो सादिज़्म और मैसोकिज़्म के सिद्धान्त वास्तविक जीवन में ही नहीं कला कृतियों में भी व्यावहारिकतया प्रयुक्त होते हैं। अवचेतन स्तर की व्याख्यायें नित्य नवीन होकर इधर प्रस्तुत हो रही हैं। परन्तु इस रचना को कवयित्री के शब्द सूत्रों की सीमा में ही सीमिततम स्थान में समझना समझाना समीचीन होगा–विशुद्ध भारतीय पृष्ठभूमि में नारी मन की कारुणिकता के कई सन्दर्भ इस 'पीड़ा' शीर्षक कृति में मुखरित हैं। वैसे इस शैली की तो बड़ी लम्बी परम्परा रही है–बीच बीच में स्वभावतया उन स्रोतों के संकेत भी सहज ही सुलभ होते हैं :—'मुखरित होकर आई थी तू मीरा के गीतों में'—मीरा के गीतों की सम्वेदना ने हिन्दी गीत रचनाओं को अपरिमेय प्रेरणा प्रदान की है—उस प्रवाह में वेग इतना अधिक है कि शास्त्रीयता की नाप तोल की प्रवृत्ति असंगत लगने लगती है—अन्य कवि मनीषियों के साथ-साथ महादेवी वर्मा ने भी कुछ शब्द इस कृति को देखकर लिखे हैं, और स्वयं उनके गीतों की स्फीति भी इसमें है :—

'चिन्ता क्या है, हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा ॥'

पीड़ा का राज्य और उसकी व्यापकता का आधार लेते हुए यहाँ लेखिका की नारी विषयक अस्मिता' को भी दृष्टि पथ पर रखना होगा—रचना में पुरुष रचयिताओं से बिल्कुल पृथक पहचान कायम करने की चेष्टा इतनी स्पष्ट है कि उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता—

"शब्दों का माध्यम लेकर पुरुषों ने जिसे कहा है,
उस पीड़ा को नारी ने जीवन में स्वयं सहा है।"

प्रस्तुत उद्धरण में पुरुष को मात्र 'कथनी' का कवि 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन' तथा नारी को 'करनी' अर्थात् वेदना व्यथामयी अग्नि परीक्षा की वास्तविक सच्ची सहिष्णुता की अधिष्ठात्री होने का आत्म विश्वास प्रकट किया गया है। मैं

इस विषय में क्या कहूँ ? पुरुष ने इन उद्घोषों पर प्रश्न चिन्ह लगाने की कभी आवश्यकता ही नहीं समझी ।

नारी की गरिमा 'देवि माँ सहचरि प्राण' कितने ही सम्बोधन द्वारा पुरुष कवियों में अभिव्यक्ति पाती रही है । त्याग बलिदान और आत्म समर्पण के आदर्श पुरुष से कहीं अधिक आगे बढ़कर नारी ने ही निर्मित किये हैं । 'एक नहीं, दो-दो मात्रायें, नर से नारी भारी' यह उदार स्वीकृति पुरुष कवि की ही है । नारी पुरुष की बराबरी के दावे पेश कर इधर स्वयं ही छोटी बनती जा रही है । अपने त्याग बलिदान की विज्ञप्ति उसके घटते हुये आत्म विश्वास की पुनः स्थापना के लिये इस युग में आवश्यक भी है :—

'बन दया क्षमा ममता तू मानव मन पर घिरती है,
तेरे बल पर मानवता देवत्व लिये फिरती है ।'

कविवर दिनकर ने भी इधर इशारा किया है :—

'श्रेय उसका आँसुओं की धार !
ध्येय उसका भग्न वीणा की अधीर पुकार ।'

कवयित्री विद्या जी में व्यथा की वह अन्तर्वर्तिनी पहचान सहजतया प्रकाशित है 'दीपक की मध्यम लौ सी पीड़ा जब हृदय जलाती,
तब हंसवाहिनी आकर चुपके-चुपके कुछ गाती' ।

कवित्व की मूल प्रेरणा 'पीड़ा' में तथा उसका प्रकाश हृदय की इसी ज्वलन्त दशा में ही है ।

बेसाख्ता याद आते हैं इस अवसर पर मिर्ज़ाग़ालिब,
'शमा हर रंग में जलती है सहर होनें तक'

ज़ौक़ साहब फ़रमाते हैं :—

'ऐ शम्मा तिरी उम्र तबीयी है एक रात,
रो कर गुज़ार या इसे हँस कर गुज़ार दे ।'

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' यह प्रेरणा महादेवी जी ने भी दी है' परन्तु इस 'ज्वलन शीलता' में 'दाह' के साथ-साथ कल्याणकारी आलोक भी है । प्रसाद जी के शब्दों में :—

'पीड़ित जगती को तेरा मंगलमय मिले उजाला,
इस जलते हुये हृदय की कल्याणी शीतल ज्वाला ।'

यह सम्वेदना किसी एक व्यक्ति की अभिव्यक्ति न होकर व्यापक आयामों में अनेक स्तरों पर प्रकट होती है ।

ताजमहल को 'काल के कपोलों पर ठहरे हुये एक उज्ज्वल अश्रुविन्दु' की संज्ञा देकर विश्वविश्रुत बंगला कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसे मानवीय शिल्पकला का सरताज बना दिया है ।
विद्या जी ने लिखा है :—

"जाने किस गहन व्यथा से रजनी आँसू बरसाती ?"

संगीत में असावरी आदि रागनियों में करुणा के सुकुमार स्वरों का ही संकलन होता है । लियोनर्दि द विंची के चित्र 'द लास्ट सपर' में अवसाद की गहराई का आकलन ही तो है । मनुष्य की परिधि से परे व्यथा की यह गहनता प्रकृति में भी लक्षित होती है । प्राकृतिक दृश्यों में मानवीय अनुभूतियों की ये करवटें प्राय: सभी कवियों ने अनुभव की हैं । इसे 'पैथेटिक फैलेसी' कहना या 'मानवीकरण' या 'परसानीफिकेशन' मात्र कह देना काफ़ी नहीं है । More is meant by it than what meets the ear. पी० बी० शैली की मान्यता है कि हमारे आल्हाद के मूल में भी पीड़ा और व्यथा विद्यमान है ।

Our sincerest laughter with some pain is fraught we look before and after and pine for what is not और यह भी कि हमारे गीतों की मिठास इसी व्यथा के तत्वों के तालमेल से उत्पन्न हुई है ।

Our sweetest songs are those which tell of saddest thought. रचनाधर्मिता में कलात्मक आत्माभिव्यक्ति की यही तृप्ति संजीवनी बन कर प्रकट होती है । कारयित्री प्रतिभा की कृतार्थता से जीवन का बोझिल भारी-पन एक उदात्त कोटि की मानसिक मुक्ति Phychic Relief) का अहसास कराता है :—

जब पीड़ाओं के बादल घिरते हैं उर अम्बर पर,
मन हलका कर देते हैं आंसू के जल कण झर कर ।
तेरी अनुभूति हुई है मानस के आघातों से,
जीवन में आते जाते अगणित झंझावातों से ।
तू सहोदरा करुणा की तू आघातों की बेटी,
तूने अपने अंतर में जीवन की पीर समेटी ।

अयि उच्छवासों की जननी अयि अश्रुकणों की माता,
तुझ से तो मानव-मन का है जनम-जनम का नाता।

संस्कृत के आचार्यों ने इस स्थिति का निरूपण 'जन्मान्तरानुभवनिर्मित वासनोत्थ' लिख कर बहुत पहले ही कर दिया था।

महाकवि कालिदास ने तो "भरे पूरे परम सुखी सौंदर्य बोधमय जीवन में भी एक अभावात्मक कारुण्य और उत्कण्ठा का अस्तित्व पूर्व जन्म की किसी अस्पष्ट स्मृति रूप में अंकित किया है।

"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वम् भावस्थिराणिजननान्तर सौहृदानि।"

हिन्दी समीक्षा के चक्रवर्ती आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'करुणा' शीर्षक निबन्ध में निर्धारित किया है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम, औरों के सुख से सुखी होने की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। "कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर" गांधी जी की परम प्रिय नरसी रचित पंक्तियाँ 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाणे रे" परोपकारिणी करुणा की ही प्रतीक हैं। कवयित्री विद्या जी की पीड़ा का सामाजिक पक्ष भी है। वह एकाङ्गिता ग्रस्त नहीं हैं, जीवन के भौतिक अभावों की समाजव्यापी चर्चा ने नितान्त एकाकीपन से इस कृति को उबार लिया है और वह जन-मन के उस संघर्ष से जुड़ गई है जो लोक करुणा का ज्वलन्त पक्ष है :–

भूखे दरिद्र पीड़ित का है साथ न तूने छोड़ा,
जीवन की विपदाओं से, मुख कभी न तूने मोड़ा।
जो हैं असहाय अपाहिज विकलांगी नंगे भूखे,
जठरानल से जल जल कर जिनके शरीर हैं सूखे।
जो भीख माँगते रहते फिर भी है झोली खाली,
आजीवन जिनके घर में जुट सका न लोटा थाली।
ऐसे भी घर हैं जिनमें करती दारिद्रता ताण्डव,
पशु से भी गिरे हुए हैं कहने भर को हैं मानव।
जग में हँसने रोने का जिनको अधिकार नहीं है,
जिनके कष्टों का, दुःख का कुछ पारावार नहीं है।

तू उनको भी अपनाती उनके दुख में भी रोती,
हो कितनी विषम परिस्थिति, तू फिर भी पृथक् न होती।

किसी भी गीत रचना की सफलता उसकी सम्प्रेषणा शक्ति में सन्निहित होती है। जब कोई रचना देशकाल की सीमा से उठकर कहीं भी किसी के अधरों पर अनुध्वनित हो उठे तभी उसकी सार्थकता सिद्ध होती है—

कोई एकान्त प्रवासी निज मन की थकन मिटाने,
निज पथ पर स्वत: लगेगा जब इन छन्दों को गाने।

इसी अनुगुञ्जन में रचना की चरम उपयोगिता है। इस लयात्मक स्मृति में रचनाकर्त्री शक्ति अमरता की कीर्ति प्राप्त करती है "तुझको जग याद करेगा गीतों की परम्परा में", सूफ़ी कवि ने लिखा था- "औ हम जान्हि गीत अस कीन्हा,
मकु यह रहइ जगत मह चीन्हा।"

श्रीमती विद्या जी हिन्दी उर्दू दोनों की ही विदुषी अभिजात महिला हैं उनके स्वभाव की सादगी और संजीदगी, अपने साहित्य प्रेमी पतिदेव प्रधान साहब के साथ जब जब वे मुझे मेरे यहाँ या अन्यत्र मिलीं, मैंने बारम्बार अनुभव की। निरन्तर हर्ष नगर में रहकर 'पीड़ा' शीर्षक उनकी इस काव्य कृति पर कुछ शब्द मैं लिख सका यह मेरे लिये सचमुच हर्ष का विषय है।

१११/२१४ हर्षनगर
कानपुर

सिद्धिनाथ मिश्र
अध्यक्ष, हिन्दी—विभाग
डी० ए० वी० पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
कानपुर

सम्मतियाँ

मैंने कवयित्री का 'पीड़ा' शीर्षक संग्रह देखा। कवि प्रसाद के छन्द में यह खण्ड काव्य पीड़ा की अर्चना है।

विषय की भाव प्रवणता मन को छू लेती है और अनायास एक तन्मयता उत्पन्न करने की क्षमता रखती है, जो कविता का लक्ष्य है।

भाषा सरल और सुबोध तथा सम्प्रेषणशील होने के कारण लेखिका अपने कथ्य को सहज ही मर्म तक पहुँचा देती है।

मेरी शुभकामनायें लेखिका के उज्ज्वल भविष्य के लिये प्रेषित हैं।

महादेवी वर्मा
एम.ए. साहित्य, वाचस्पति
१७ सी. अशोक नगर
इलाहाबाद
२१-११-८४

उप कुलपति
प्रयाग महिला विद्यापीठ
(महिला विश्वविद्यालय)

श्रीमती विद्या सक्सेना एक समर्थ कवयित्री हैं। वे जीवन की वास्तविकता के चित्र अनुभूतियों के आधार पर ही प्रस्तुत करती हैं। नारियों की संवेदना जब उनकी रचनाओं में साकार होती है तो उसके जो चित्र उभरते हैं वे इन्द्रधनुषी होते हैं,। और ये रंग क्षणिक न होकर स्थायी होते हैं। जो अनुभूति प्रसाद के 'आँसू' को पढ़कर होती है, कुछ वैसी ही अनुभूति विद्या जी की 'पीड़ा' पढ़ कर हुई। पीड़ा में तो नारी अबला रूप से साकार हो उठी है।

श्रीमती विद्या जी के प्रति मेरी अनेक शुभकामनायें।

रामकुमार वर्मा

साकेत, इलाहाबाद–२
२०-११-८४

श्रीमती विद्या सक्सेना का नाम हिन्दी जगत में सुपरिचित है। उनकी कवितायें लोकप्रिय हुई हैं। उनकी सतत साधना से वे अब सिद्धहस्त कवयित्री बन गई हैं।

'पीड़ा' शीर्षक से उनका अभिनव छन्द - काव्य प्रेमियों को रुचिकर लगेगा, उत्तरोत्तर उनकी प्रतिभा का विकास हो मेरी कामना है।

सोहनलाल द्विवेदी
२३-११-'८४

मैंने विद्या बहन की 'पीड़ा' पुस्तक देखी पढ़ी, ऐसा लगा कि यह मेरी ही पीड़ा है, जग की पीड़ा है, मानव मन की पीड़ा की वास्तविक पीड़ा है।

कविता वही है जिसमें पाठक अपने को स्थापित कर लेता है, इनकी पीड़ा में सचमुच पाठक अपने को स्थापित कर लेगा। जीवन आशा पर आधारित है, पीड़ा को कैसे भूला जा सकता है, यह भी इसमें मिलेगा।

१९७५ में भारती परिषद ने विद्या बहन को सम्मानित कर जो प्रशस्तिपत्र दिया था, वह कितना उचित था इनकी इसी पुस्तक से बोध होता है।

मेरी शुभ कामनायें विद्या बहन के साथ हैं।

श्रीधर शास्त्री
प्रबन्ध मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

११४, विवेकानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-३
१२-११-'८४

काव्य धारा का स्रोत अन्तर्निहित भाव है जो ज्ञान-कर्म दोनों का जनक है। भाव प्रेरक है। ज्ञान-कर्म उसी से प्रेरित होते हैं। यह भाव आगे चल कर उद्वेगों में परिणत हो जाता है जो अपने उच्छालित रूप में काव्य पात्रों की कृतियों में अभिव्यक्ति पाता है। जिस आत्मा ने भाव साधना की है वही उसकी संगिनी बनी हुई जन्मजन्मान्तरों तक खेलती कूदती रहती है। श्रीमती विद्या सक्सेना की काव्य विभूति उनकी ऐसी ही साधना-सम्पदा है।

प्रस्तुत पीड़ा' शीर्षक काव्य लेखिका के सारस्वत सम्मान का प्रतीक है। उनकी दृष्टि में पीड़ा सुदृढ़ आदर्शों की प्रचेता है जो जीवन के दुर्दिनों को हंसती हुई काट देती है। वह जीवन में विनम्रता भर देती है। उद्दण्डता, उच्छृंखलता जीवन की विनाशिका है तो विनम्रता जीवन का निर्माण करने वाली है।

'पीड़ा' की प्रशस्ति-सूचिका निम्नाङ्कित काव्य पंक्तियाँ पठनीय हैं:—

पा तुझको गर्व अहम का, सारा मद भ्रम खो जाता।
तेरे ही पथ दर्शन से, मानव मानव हो जाता।।

बन दया क्षमा ममता तू, मानव-मन पर घिरती है।
तेरे बल पर मानवता, देवत्व लिए फिरती है।।

सोना तपने पर कुन्दन बन जाता है। मानव भी पीड़ा में तपकर चमक उठता है। अग्नि मल को दग्ध करती है तो पीड़ा पापपाश को भस्म कर देती है। भावुक हृदय की सहेली पीड़ा, उसकी अभिन्न परिणीता बन जाती है। जिसने उसे अपना लिया, वह विजयी वीर बन गया। शक्ति है ही शिव को शिवत्व देने वाली।

पीड़ित प्राणी की निश्छलता मानवता की अनुपम धरोहर है। मानवीयता सदैव मान पाती रहती है। उसी ने भूले भटकों को मार्ग दिखाया है। मानवता की ओर मुड़ने में ही वास्तविक कल्याण है।

कवयित्री के शब्दों में सभी पाठक अभिभूत होकर गा उठेंगे:—

तेरे चरणों में अर्पण,
सारा ऐश्वर्य धरा का।
तुझसे जीवित है गौरव,
भारत की परम्परा का।

ऐसे सुन्दर काव्य के लिये कवयित्री को
भूरि भूरि साधुवाद।

मुन्शीराम शर्मा

९/७० आर्य नगर, कानपुर

१७—११—८५

अनुशंसा

हिन्दी साहित्य में महा कवि 'प्रसाद' ने काव्य के क्षेत्र मे 'कामायनी' और 'आँसू' लिखकर अपार यश अर्जित किया है। उनका खण्ड काव्य 'आंसू मुक्तक शैली में लिखी गई एक स्वतंत्र लम्बी रचना है, जिसमें मुख्य भाव पीड़ा में ही केन्द्रीभूत हुआ है, और आँसू, अन्तरंग से आने वाले रहस्यों का उच्छ्वसित उद्गार हैं।

'आंसू' की शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि उससे आकर्षित होकर 'करुणा' 'आहें' 'अस्मिता' आदि रचनायें उद्भूत हुईं। विद्या जी की पीड़ा कृति भी उसी विधा की श्रृंखला की एक कड़ी है।

पीड़ा का महत्व दार्शनिक एवं सूफ़ियाना है, मैंने इस शेर में इसी पीड़ा का चित्रण किया है—

''जिस पे हँस-हँस के लुटा आये हैं दुनियाये-निशात,
वह ख़लिश दिल में छुपाये तेरा सोदाई है।

इस पीड़ा का कारण कहीं लौकिक तो कहीं आध्यात्मिक है। इस छायावादी विधा में पीड़ा के केंद्र बिंदु में एक अकथ मिठास, एक निराला मज़ा या अनोखा आनन्द मिलता है, जो सूफ़ी दर्शन सम्मत साधना पद्धति का प्रमुख अंग है, तभी तो भगवान के प्रति पीड़ा सिक्त प्रणय प्राप्त करने के बाद, आत्मविभोर सूफ़ी के मुख से इस प्रकार कृतज्ञता के स्वर फूट उठते हैं।

'तेरे हज़ार शुक्र दिया दिल दुखा हुआ'

दुखा दिल सम्वेदनात्मक मानवतावाद का उपादान कारण है। कबीर का सम्पूर्ण दर्शन पीड़ा प्रवण है।

हिन्दी काव्य पर पीड़ा का प्रभाव वस्तुतः बौद्ध-दर्शन की अनन्त करुणा की छाप है।

मीरा, प्रसाद, महादेवी इसी यात्रा के सहयात्री हैं। विद्या जी ने भी इसी शैली के अनुकरण पर अपनी काव्य-यात्रा प्रारम्भ की है।

इसमें लेखिका ने पीड़ा के विभिन्न पार्श्वों पर मंथन और चिन्तन किया है, और पीड़ा के मुखरित स्वरूप को अनेक आयामों में आबद्ध किया है।

यथा:—

जब पीड़ाओं के बादल, घिरते हैं उर-अम्बर पर।
मन हलका कर देते हैं, आँसू के जल-कण झर कर॥
जब एक ओर नयनों से, बहता है आँसू खारा।
तब स्वयं प्रवाहित होती, कविता की अविरल धारा॥

दीपक की मध्यम लौ सी, पीड़ा जब हृदय जलाती।
तब हंस-वाहिनी आकर, चुपके-चुपके कुछ गाती॥
खिलते भावों के शतदल, गतिशील लेखनी होती।
कवि की भावुकता अविरल, शब्दों के हार पिरोती॥
हर छन्द-छन्द पीड़ामय, हर गीत-गीत वैरागी।
विचरण करते मन वन में भावों के तपसी त्यागी॥
हो जाता मुक्त जहाँ मन, जीवन के अनुबन्धों से।
होती पीड़ा वैतरणी, अवतरित तभी छन्दों से॥
प्रभु चरणों पर होता है, तब अश्रु कणों का तर्पण।
धुल जाता स्वयं न जाने, कैसे धूमिल मन-दर्पण॥
पल भर डूबा भावों में, मन अपने में खो जाता।
झुक जाता मन श्रद्धा से तेरा पूजन हो जाता॥

कविता के मूलभाव तो शाश्वत हैं, सृष्टि के प्रारम्भिक उद्भव के साथ साथ ही प्राणियों मे, चेतना और सम्वेदन की भी सृष्टि हुई है। साहित्य शास्त्रियों ने इसी बिन्दु पर लक्ष्य रखते हुए ठीक ही कहा है—

कविता, अनुकृति नहीं, अनुकरण नहीं, और अनुसरण भी नहीं है। वह तो संदर्भ और परिस्थितियों के अनुसार शाश्वत भाव का पुनर्मूल्यांकन है। इसमें अभिव्यक्ति प्रक्रिया में सार्थक सरस चमत्कारिक और संगीतात्मक समीचीन रमणीय अर्थों के प्रतिपादक शब्दों का सुन्दर क्रम में किया गया शब्द संगठन ही प्रधान है, शेष सब गौड़ है।

विद्या जी ने अपनी काव्य यात्रा में इन विन्दुओं पर प्रत्येक स्थल पर सतर्क दृष्टि रक्खी है।

ऐसी सुन्दर कृति के लिए मैं अपनी ओर से तथा हिन्दी साहित्य के प्रबुद्ध अध्येताओं की ओर से श्रीमती विद्या जी को सहर्ष साधुवाद प्रदान करता हूँ।

हृदय नारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

हृदय मंदिर १०६/२७४ गाँधीनगर,
कानपुर

अपनी बात

सन् १९५६ में मेरा प्रथम गीत संग्रह 'जीवन तरणि' के नाम से पाठकों के समक्ष आया था उसके बाद अपनी अविराम अस्वस्थता के कारण ऐसा अनुभव होने लगा कि सम्भवत: मैं अब कुछ भी न कर सकूँगी।

एक लम्बे अन्तराल के पश्चात श्री गिरिजा शंकर लाल सक्सेना 'स्वतंत्र' मेरे निवास स्थान के समीप ही आकर रहने लगे और मेरे सम्बन्ध में ज्ञात होने पर उन्होंने मुझे पुन: लेखन प्रारम्भ करने की प्रेरणा दी। धीरे धीरे मैंने अनुभव किया कि मेरे अन्दर का कवि बिल्कुल मरा नहीं है और एक बार पुन: मैं माँ सरस्वती की आराधना में लग गई।

१९८० में मैंने अपने द्वितीय गीत संग्रह 'श्रद्धा सुमन' का प्रकाशन प्रारम्भ किया परन्तु कुछ व्यवधान आ जाने से वह कार्य अधूरा ही रह गया।

बाल्यकाल से ही मातृ हीना होने के कारण जो पीड़ा मेरे हृदय में अर्न्तनिहित थी उसकी छाप अनजाने ही मेरी समस्त रचनाओं पर पड़ी है। इसके अतिरिक्त बाल्यावस्था में ही जब मैं १४,१५ साल की थी, डा० महादेवी वर्मा की नीरजा, साध्यगीत तथा यामा आदि पुस्तकें पढ़ीं, यद्यपि उन रचनाओं को समझना मेरी बाल्य बुद्धि के परे था, फिर भी उन रचनाओं का कारुण्य अनजाने ही मेरे हृदय पर अपनी छाप छोड़ गया। करुण रस मेरा सबसे प्रिय रस बन गया। मेरी यही भरसक चेष्टा रही कि मेरी रचनायें सात्विक तथा संयमित रहें। नारी होने के नाते मैंने उन पर कभी अभद्रता की छाया नहीं पड़ने दी।

कविता का वातावरण बनाने के लिये पूर्व एवम् सम सामयिक रचनाओं के अध्ययन के अतिरिक्त साहित्य संगमन और पारस्परिक परिचर्चा तथा विचार गोष्टियों द्वारा माहौल बनता रहता तथा बनाया भी जाता है। भगवान की कृपा

से यह उपलब्धियाँ मुझे सदैव ही प्राप्त होती रही हैं जिससे समय-समय पर कविता लिखने की प्रेरणा मिलती रही है ।

पूज्य आचार्य 'सनेही जी' तथा पूज्य दादा आचार्य हृदय नारायण जी 'हृदयेश', प्राय: आते जाते रहे और मेरे प्रेरणा स्रोत बनकर मुझे सदैव प्रोत्साहित करते रहे । उनके विशाल अध्ययन चिन्तन मनन से काव्य मनीषा के सभी पक्ष समालोकित होते रहे जिनकी उज्वल आभा में सुस्पष्ट मार्ग दर्शन मिलता रहा ।

महाकवि प्रसाद जी की 'आँसू' शीर्षक पुस्तक जब मैं हाई स्कूल में पढ़ती थी मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, यद्यपि मैं आज भी उसे पूर्णतया समझने में अपने को असमर्थ पाती हूँ । उसके बाद कविवर 'प्रवर' जी की आहें शीर्षक कृति देखी, अनायास ही मन में इस भावना का प्रादुर्भाव हुआ कि 'आँसू' और आहों की जन्मदात्री पीड़ा ही क्यों उपेक्षिता रह जाय, और उसी दिन से पीड़ा शीर्षक देकर आनन्द छन्द में मैं यह काव्य लिखने बैठ गई । मेरी अल्प बुद्धि इस कार्य में कितनी सफल असफल हुई है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे । मैं तो मन में अनायास आये उद्‌गारों को छन्द का रूप देती गई इतना जानती हूँ । यद्यपि यह पूरा काव्य केवल ३ बार की बैठक में ही पूरा हो गया था, परन्तु इसको लिखे भी ३ वर्ष बीत गये । मैंने तो कभी सोचा भी न था कि कभी यह पुस्तक प्रकाशित होकर आप सबका ममत्व पा सकेगी परन्तु मेरे पति श्री राधेश्याम जी प्रधान इसके लिए सतत प्रयत्नशील रहे, अस्वस्थ होते हुए भी वह मेरी सभी रचनाओं के प्रकाशन में पूरा सहयोग दे रहे हैं, यह मेरे लिए कम गर्व की बात नहीं है ।

आदरणीया महादेवी जी, पूज्य दादा डा० रामकुमार जी, वर्मा राष्ट्रकवि सोहन लाल जी द्विवेदी, पूज्य श्रीधर जी शास्त्री, पूज्य दादा आचार्य हृदय नारायण जी 'हृदयेश'

तथा डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने अपनी उदार सम्मति देकर मुझे अनुग्रहीत तो किया ही है साथ ही मेरा उत्साहवर्धन भी किया है। श्रीयुत डा० सिद्धनाथ जी मिश्र ने समयाभाव होने पर भी पीड़ा की भूमिका लिखकर मेरे ऊपर जो कृपा की है मैं उसके लिए हृदय से आभारी हूँ। मेरी यह कृति जीवन के किन्हीं उदास एकान्त क्षणों में यदि पाठकों की सहचरी बन सकी तो मैं अपने प्रयत्न को सार्थक समझूँगी।

विद्या सक्सेना
१०७/१६० जवाहर नगर
कानपुर

विद्या सक्सेना

ऐ ! पीड़े मन में तेरा,
मैं आवाहन करती हूँ ।
नत-मस्तक हों श्रद्धा से,
तेरा वन्दन करती हूँ ।

ऐ! उच्छ्वासों की जननी.
ऐ! अश्रुकणों की माता ।
तुझ से तो मानव-मन का,
है जन्म-जन्म का नाता ।

तेरे आगे नत-मस्तक,
नश्वर जग का हर प्राणी ।
निश-दिन मन-सिंहासन पर,
शासन करती पटरानी ।

भूखे दरिद्र पीड़ित का,
है साथ न तूने छोड़ा ।
जीवन की विपदाओं से,
मुख कभी न तूने मोड़ा ।

जो हैं असहाय अपाहिज,
विकलांगी नंगे भूखे ।
जठरानल से जल-जल कर,
जिनके शरीर हैं सूखे ।

जीवन पर्यन्त न मिलता,
भर पेट कभी भी भोजन ।
है जिन्हें भार बन जाता,
अपने जीवन का हर क्षण ।

अति भाग्य-हीन जीवन में,
पग-पग पर ठोकर खाते ।
उनके ही रक्त-कणों से,
होली धनवान मनाते ।

जो भीख माँगते रहते,
फिर भी है झोली खाली ।
आजीवन जिनके घर में,
जुट सका न लोटा थाली ।

ऐसे भी घर हैं जिनमें,
करती दरिद्रता ताण्डव ।
पशु से भी गिरे हुये हैं,
कहने भर को हैं मानव ।

वस सूँघ जिन्हें कुत्ते भी,
मुँह फेर लिया करते हैं ।
उन टुकड़ों को खाकर के,
कंगाल जिया करते हैं ।

जग में हँसने रोने का,
जिनको अधिकार नहीं है।
जिनके कष्टों के दुख का,
कुछ पारावार नहीं है।

तू उनको भी अपनाती,
उनके भी दुख में रोती।
हो कितनी विषम परिस्थिति,
तू फिर भी पृथक न होती।

जो व्यक्ति तिरस्कृत होकर,
तेरे द्वारे पर आया।
निश्चय ही तूने उसको,
आश्रय देकर अपनाया।

विस्तृत तेरा शरणास्थल,
जो उसके नीचे आया ।
अपना कर उसे सदा ही,
तूने सन्मार्ग दिखाया ।

जिस तरह ब्रह्म व्यापक है,
धरती, आकाश, पवन में ।
वैसे ही तू भी व्यापक,
हर प्राणी के जीवन में ।

तू निहित हृदय में ऐसे,
कुण्डलि में ज्यों कस्तूरी ।
कैसे सम्भव हो सकती,
तुझ से जीवन की दूरी ।

मानव से जब जीवन की,
प्रिय वस्तु कभी खोती है।
उसके अन्तर में तेरी,
अनुभूति तभी होती है।

तेरी अनुभूति हुई है,
मानस में आघातों से।
जीवन में आने वाले,
अगणित झंझावातों से।

जब मन से कोई प्राणी,
तुझको हृदयंगम करता।
तब उसके मुख दर्पण पर,
तेरा प्रतिविम्ब उभरता।

जीवन के वे सुखमय क्षण,
जब मन से मन मिलते हैं।
जब अन्तर में भावों के,
अगणित शतदल खिलते हैं।

कितने मोहक लगते हैं,
जग के वे झूठे नाते ।
वे ही तो पीड़ाओं को,
आमंत्रण देने आते ।

खाईं जिसने निज मन पर,
अविराम प्रेम की घातें ।
वह विरहाकुल करता है,
निर्जन में तुझ से बातें ।

जब जब वर्षा के बादल,
आ उमड़-घुमड़ कर बरसें ।
विरहिन की व्याकुल आँखें,
तब प्रिय-दर्शन को तरसें ।

तू बहती रही निरन्तर,
कवि - उर के उद्गारों में ।
विरही तुझको पाते हैं,
सावन की बौछारों में ।

तू ही सूनी शय्या पर,
विरहिन के सँग-सँग सोती ।
तेरे स्वागत में आँखें,
बरसातीं अविरल मोती ।

केवल तूने ही मन को,
दुर्दिन में कभी न छोड़ा ।
जीवन पर्यन्त निभाया,
जिससे भी नाता जोड़ा ।

जीवन के अन्तिम क्षण तक,
तू मानव-मन की साथी।
तू जीवन का अक्षय वट,
जन्मी जिससे करुणा थी।

जिनमें मनुष्यता जितनी,
उतना ही तुझको पाते।
विद्वान - मनीषी - पण्डित,
तुझको ही हैं अपनाते।

लेकर के घनी उदासी,
जब-जब संध्या आती है।
तू ही समीप मानव के,
नीरवता में गाती है।

हो सका न तेरे कारण,
मानव-मन कभी अकेला।
तू सदा लगाये रहती,
मधु स्मृतियों का मेला।

लेता है समय परीक्षा,
हर प्राणी की जीवन में।
जीवन के विष से सिंचित,
पीड़ा पलती है मन में।

जिस जीवन में लग जाता,
घुन सा चिंता का कीड़ा।
देती आजीवन उसका,
बस साथ अकेली पीड़ा।

है तेरे बिना जगत का,
हर स्वप्न अधूरा रहता ।
वह अपराजित है मन पर
जो तेरा शासन सहता ।

जो तेरे सँग-सँग चलता,
वह लक्ष्य सदा पाता है ।
जीवन की बाधाओं से,
वह कभी न घबराता है ।

मुख मोड़ न पाये उसका,
झंझा के कठिन थपेड़े ।
है शक्ति नहीं मानव में,
उस महाशक्ति को छेड़े ।

उसके इंगित पर चलते,
ये तूफानों के झोंके ।
है कौन भला ऐसा जो,
जाने वाले को रोके ।

जिसके अन्तर से लिपटीं,
शत-शत व्यापी पीड़ायें ।
उसको कब डरा सकेंगी,
ये संसृति की विपदायें ।

जग में केवल पीड़ित मन,
दुर्दिन में भी मुसकाता ।
नदियों के सँग-सँग बहता,
झरनों के सँग-सँग गाता ।

पर्वत की भाँति सदा से,
आदर्श सुदृढ़ हैं उसके ।
वह काट दिया करता है,
जीवन के दुर्दिन हँस के ।
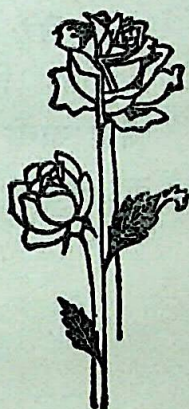
तेरे द्वारा जीवन में,
ऐसे विनम्रता आती ।
जैसे डाली फल पाकर
है नत-मस्तक हो जाती ।

झरनों के झर-झर स्वर में,
तेरी ही व्यापकता है ।
सबसे महान जीवन में,
केवल तेरी सत्ता है ।

तू सहोदरा करुणा की;
तू अघातों की बेटी ।
तूने अपने अन्तर में;
जीवन की पीर समेंटी ।

तेरे दर्शन होते हैं,
आँसू में उच्छ्वासों में ।
तुझको ही सब पाते हैं,
आती-जाती साँसों में ।

जब उच्छ्वासों के बादल,
हैं हृदय-व्योम पर छाते।
पीड़ा के सागर से हम,
तब नयन-कलश भर लाते।

मन के सागर में उठतीं,
तेरी उद्दाम हिलोरें।
फिर भीग-भीग जाती हैं,
उनसे दृग-पट की कोरें।

जाने किस गहन-व्यथा से,
रजनी आँसू बरसाती।
प्रत्येक पुष्प पर अगणित,
मुक्ता-कण बिखरा जाती।

हो मौन कभी सहती तो,
बन आह कभी कहती है।
जब बाँध टूट जाता तो,
आँसू बन कर बहती है।

आकाश काँप उठता है,
धरती धीरज खोती है।
जब कभी-कभी अनजाने,
पीड़ा मुखरित होती है।

घुटतीं मन-कारागृह में,
मिटती अतृप्त सी चाहें।
फिरतीं अदृश्य में भटकी,
गुमराह प्रवासी आहें।

है बार-बार मन-पट पर,
तेरा प्रतिबिम्ब उभरता।
जब-जब ठोकर लगती है;
जीवन हर बार सँवरता।

पा तुझको गर्व अहम् का,
सारा मद-भ्रम खो जाता।
तेरे ही पथ-दर्शन से,
मानव, मानव हो जाता।

बन दया, क्षमा, ममता तू
मानव-मन पर घिरती है।
तेरे बल पर मानवता,
देवत्व लिये फिरती है।

सागर से शान्त हृदय में,
पीड़ा निवास करती है।
गम्भीर बना देती है,
मन का विकास करती है।

तू ज्ञात करा देती है,
हैं कौन पराये-अपने।
करके यथार्थ का दर्शन,
टूटे हैं भ्रम के सपने।

जीवन की अन्तिम यात्रा,
तेरा सन्देश सुनाती।
तेरे प्राणों से जन्मी,
आवाज़ दूर तक जाती।

हो जाता है पल भर में,
तब सत्य-असत्य विभाजन।
कर लेता है हर प्राणी,
आँखों से जीवन-दर्शन।

खुलती विवेक की आँखें,
उठता है पर्दा भ्रम का।
फिर दृश्य हुआ करता है,
परिवर्तित जीवन-क्रम का।

हम किसी दुखी प्राणी के,
जब साथ-साथ हैं रोते ।
स्वयमेव तभी जीवन में,
पीड़ा के दर्शन होते ।

भावुक की परम सहेली,
कवि की अभिन्न परिणीता ।
तुझको जिसने अपनाया,
उसने जीवन को जीता ।

तूने केवल देखा है,
जीवन का रूप सलोना ।
तेरी ज्वाला में तपकर,
मानव-मन होता सोना ।

तू देती मानव-मन को,
उपकार, त्याग, क्षमता है ।
तेरे ही कारण जीवित,
यह दया, क्षमा, ममता है ।

तेरे चरणों में अर्पण,
सारा ऐश्वर्य धरा का।
तुझ से जीवित है गौरव,
भारत की परम्परा का।

भूले-भटके जीवन का,
तू पथ-दर्शन करती है।
कितना मानव के मन में,
तू परिवर्तन करती है।

निष्पाप; निष्कपट, निश्छल,
व्यवहार रहा है तेरा,
हर युग में मानवता से,
बस प्यार रहा है तेरा।

मन के निस्तेज निलय को,
तू ज्योतिर्मय करती है।
मानव-चरित्र को निर्मल,
निर्भीक, अभय, करती है।

पड़कर वैभव के मद में,
मनुजत्व मनुज खोता है।
पर तेरे द्वारा मानव,
गौरवमण्डित होता है।

जीवन - कर्तव्य - तुला पर,
जब-जब मानव-मन डोला।
तूने अपने अंकुश से,
उसका अन्तर दृग खोला।

तुझको पाकर जीवन में,
मन हो जाता वैरागी।
तूने निर्मित कर डाले,
कितने ही तपसी त्यागी।

तेरे संग-संग कटते हैं,
जीवन चिन्तन के वे क्षण।
जिनसे करना सीखा है,
मानव ने आत्म-समर्पण।

मानवी-प्रेम को तूने,
वासना रहित कर डाला।
प्रेरित हो तुझ से मीरा,
पी गई ज़हर का प्याला।

तेरा महत्व है जग की,
इन हारों में जीतों में।
मुखरित होकर आई थी,
तू मीरा के गीतों में।

जब जीवन पर होता हैं,
असफलताओं का घेरा।
तेरे ही द्वारा मन में,
होता विरक्ति का फेरा।

राधा ने तुझको पाया;
वन्शी की मोहक धुन में।
बावली बनी भटकी थी,
वर्षों जो वृन्दावन में।

इस 'प्रेम' शब्द को तूने
जग में व्यापक कर डाला।
तुझसे है कहाँ अछूती,
प्रेमी के उर की ज्वाला ।

जग में जीवन को पीड़ा,
देते हैं केवल अपने ।
सन्तप्त बहुत करते हैं,
साधों के सुन्दर सपने ।

खेला करतीं जो मन से,
आशायें आंख - मिचौली ।
भर देती हैं दुर्दिन में
वे ही पीड़ा से झोली ।

तुझको ही गले लगाकर,
श्रीराम बने वन-वासी ।
जिनको खोकर जन-जन में,
छाई थी घनी उदासी ।

जब सर्वप्रथम आई तू,
तुलसी महान के मन में ।
हो गये तुरन्त अमर वह,
उस पावन स्वर्णिम क्षण में ।

तुलसी ने उसी समय से,
अपनाया केवल दुख को ।
कर दिया पृथक पलभर में,
भौतिक जीवन के सुख को ।

वह विरह- व्यथा, वह पीड़ा,
उनको प्रभु तक ले आई।
जन-जन के मन में गूँजी,
फिर 'मानस' की चौपाई।

श्री राम नाम का चिन्तन,
चिन्तन की वह गहराई।
वह बढ़े सतत उस पथ पर,
जिस पर पीड़ा ले आई।

वह पीड़ा ही थी जिसने;
काटी थी भव की पीड़ा।
कर दी समाप्त पल भर में,
वह जन्म-मरण की क्रीड़ा।

जो एक बार भी डूबा,
वह बाहर निकल न पाया।
अपने हो गये पराये,
पाई अनन्त की छाया।

ये तृष्णायें ये साधें,
कब पूरी हो पाती हैं।
ये क्षणिक सुखों की चाहें,
युग युग तक भटकाती हैं।

उर मध्य शान्ति की शीतल
चन्द्रिका कहाँ खिलती है।
जितनी तृष्णा बढ़ती है,
उतनी अतृप्ति मिलती है।

इन चकित-भ्रमित राहों पर,
अब व्यर्थ न कोई भटके।
कर आत्मसात पीड़ा को,
खुलते कपाट उर-पट के।

जिसको मन की पीड़ा ने,
गा दिया पीर के स्वर में।
उसको जग ने सुन पाया,
'नानक' 'कबीर' के स्वर में।

पीड़ा के उद्‌गारों ने,
जग के आडम्बर तोड़े ।
केवल जीवन के पथ पर,
पद-चिन्ह व्यथा के छोड़े ।

अब भी उनके अनुयायी,
चलते हैं उन राहों पर।
जीवन - रहस्य समझाते;
साधों के टूटे खँडहर ।

जिस मरुस्थली पर गिरते,
आँसू के अविरल निर्झर
वह स्वयं सरस हो उठती,
हो जाती जलमय, उर्वर ।

तू है चिर-परिचित जग की,
इस व्यापक नश्वरता से ।
फिर भी न पृथक हो पाती,
भावुकता से, ममता से ।

मन - सागर की दुर्गम तम,
गहराई में तू सोती ।
तेरे द्वारा नयनों की,
मृदु सीप सँजोती मोती ।

धरती पर कितने स्वर्णिम,
इतिहास बनाये तूने ।
अपने ही द्वारा कितने,
आदर्श सजाये तूने ।

तेरा सम्बन्ध रहा है,
जीवन के आदर्शों से ।
तू दूर सदा रहती है,
पतनों से अपकर्षों से ।

यह त्याग-पुण्य की धरती,
आदर करती है तेरा ।
तुझ से ही अनुप्राणित है,
दुनियाँ का रैन - बसेरा ।

जो तुझ में तन्मय होता,
जो तुझ में ही खो जाता ।
निश्चय विदेह बन जाता,
अतिशय महान हो जाता ।

तुझ से है नहीं अछूती,
जीवन की कोई क्रीड़ा ।
तू मन-मन की प्रेयसि है,
तू है जन-जन की पीड़ा ।

ऐसे ही चलता रहता,
यह निशि-वासर का फेरा ।
दिनकर प्रकाश बिखराता,
लाती है रात अँधेरा ।

तारे गिन-गिन कर कटतीं,
प्राय: वियोगिनी रातें ।
करता है एकाकी मन,
फिर-फिर अतीत से बातें ।

मन-बीच व्योम - गंगा सी,
सँस्मृति की लहरें बहतीं।
लगता जैसे रुक - रुक कर
कुछ भूली बातें कहतीं।

जैसे अम्बर से तारे,
चुपचाप टूट जाते हैं।
वैसे जीवन में मिलकर,
कुछ साथ छूट जाते हैं।

उस चिर-वियोग के क्षण में
प्रायः यह भी है देखा।
रह जाती उस के पीछे,
सुस्मृति की धूमिल रेखा।

वह सुस्मृति जन-मानस में,
पीड़ा बन कर है पलती ।
जो कभी हँसा जाती थी,
दुर्दिन में आकर छलती ।

जब कभी असह हो जाती,
होती सीमा के बाहर ।
तब बहते हैं आँखों से,
आँसू के अविरल निर्झर ।

जीवन के कटु अनुभव से,
पाये अमूल्य जों क्षण हैं ।
मथ कर मन के सागर कों,
निकले ये अमृत-कण हैं ।

हैं भाग्यवान वे जिनको,
मिल सका स्नेहमय आँचल ।
अन्यथा धूल में गिरकर,
होना है इनको निष्फल ।

कितने हैं ऐसे जिनको,
जग से न सान्त्वना मिलती ।
जिनके मानस की कलिका,
आजीवन कभी न खिलती ।

प्रहरों मन खोया रहता,
प्रहरों होती हैं बातें ।
हैं कभी-कभी कट जातीं,
आँखों-आँखों में रातें ।

जब नीड़ टूटता, जैसे,
तृण-पात बिखर जाते हैं।
ऐसे ही जब भावों के,
जलजात बिखर जाते हैं।

दिन का कोलाहल आकर,
खो देता अवसादों को ।
मन स्वतः भूल सा जाता,
गत-जीवन की यादों को ।

आलोकित हो उठती है,
ज्यों-ज्यों स्वप्नों की नगरी ।
रीती होने लगती है,
सुन्दर भावों की गगरी ।

कर्तव्य - कर्म के आगे,
झुकना पड़ता जीवन को ।
फिर अपनानी पड़ती है,
भौतिकता योगी-मन को ।

तब पुनः जोड़ना होता,
जग से जीवन का नाता ।
प्रत्यक्ष जीविका का जब,
कटु-सत्य सामने आता ।

तब ये मन की भावुकता,
दुर्बलता काम न आती।
संघर्ष-पूर्ण जीवन में,
किसको कल्पना सुहाती।

यह वह दुनिया है जिसमें,
जीवन्त कथायें बिकतीं।
वह हाट जहाँ मानव की,
सन्तप्त व्यथायें बिकतीं।

इसमें भावों का सौदा,
इसमें गीतों का सौदा।
है यहाँ प्रीति का सौदा,
होता मीतों का सौदा।

मन की भावुकता बिकती,
तन का श्रृँगार बिक जाता।
कौड़ी के मोल यहाँ पर,
कवि, गीतकार बिक जाता।

खिलने से पहले जिनका,
मकरन्द सदा को खोता।
इस उपवन में उन नन्हीं,
कलियों का सौदा होता।

है यहाँ रूप का सौदा,
होता कुकर्म का सौदा।
है यहाँ पुण्य बिक जाता,
होता अधर्म का सौदा।

असहाय दुखी जीवन के,
बनते जो भाग्य विधाता।
करते सतीत्व का सौदा,
दुर्दिन में आश्रय- दाता।

सब सब्ज़बाग़ दिखलाते,
दिखलाते स्वप्न अनोखे।
यह कपटी दुनियाँ देती,
पग-पग पर उसको धोखे।

यह जीवन की परवशता,
यह जीवन की लाचारी।
है यहाँ पुरुष के सन्मुख
सर्वदा समर्पित नारी।

मानव - जीवन पलता है,
जिस आँचल की छाया में।
वह केवल ढूँढ रहा है,
वासना उसी काया में।

वह ऊपर से गाती है,
अन्दर है आँसू पीती।
है ज्वाला मुखी समेटे,
अन्तर में, फिर भी जीती।

मन गंगाजल सा निर्मल,
फिर भी तो तन है पापी।
पश्चातापी ज्वाला में,
जलता है मन सन्तापी।

जो जीवन - मरुस्थली पर,
नित आँसू बरसाती है।
पुरुषों के संकेतों पर,
हँसती, रोती, गाती है।

नारीत्व जहाँ खोजता,
पायल की झंकारों में।
पथ-भ्रष्ट भटकता फिरता,
मानव उन बाज़ारों में।

आमोद क्षणिक देती हैं,
पलभर को ही क्रीड़ायें।
जीवन की शान्ति गँवा कर,
मिलती हैं चिर पीड़ायें।

खोजे से प्यास अधर की,
बुझ नहीं कभी पाती है।
यह जीवन की मृग-तृष्णा,
आजीवन भटकाती है।

केवल अशान्ति मिलती है,
केवल मिलती है हाला।
खो ममता की शीतलता,
केवल मिलती है ज्वाला।

ममता की वल्लरियों को,
विष से सींचा जाता है।
निर्दय समाज फिर उन पर,
हँसता है, मुसकाता है।

जो पूर्ण चन्द्र सा पावन,
वह रूप कलंकित होता।
निर्भयता खो जाती है,
जीवन आतंकित होता।

पथ-भ्रष्ट भटकती फिरती,
पग-पग पर ठोकर खाती।
प्रतिबन्ध लगा मरने पर,
जीने में लज्जा आती।

जीवन के दुर्बल कन्धे,
जब असह भार ढोते हैं।
तब अधर मौन हो जाते,
बस नयन मुखर होते हैं।

अब और न जाने कब तक,
नारी चुपचाप रहेगी ।
अपने जीवन पर कितने,
वह अत्याचार सहेगी ।

कठपुतली बनी रहे वह,
क्या यह ही मानवता है ?
जिसको सहिष्णुता कहते,
वह केवल दुर्बलता है ।

जीवन के मूक रुदन को,
अब तो सस्वर होना है ।
अब तक जो मौन रही है,
अब उसे मुखर होना है ।

क्या यह उसकी परवशता ?
क्या यह उसकी लाचारी ?
वह शक्ति और दुर्गा है,
क्यों भूल गई यह नारी ?

वह महाशक्ति है जिसने,
तूफ़ानों को झेला है।
आवश्यकता पड़ने पर,
तलवारों से खेला है।

जिसकी कटार के रिपु ने,
अगणित आघात सहे हैं।
साक्षात प्रलय है जिसने,
'मीना बाज़ार' सहे हैं।

शोभित करती जो पति को,
स्वयमेव मुण्ड-माला से।
हँस कर आलिंगन करती,
जो जौहर की ज्वाला से।

वह नारी सदा रही जो;
पावन - निर्दोष - पुनीता ।
लेकर पीड़ा का आश्रय,
वन-वन भटकी वह सीता ।

जिसके द्वारा मिलती है,
पतिव्रत की पावन दीक्षा ।
वह साध्वी - सती सुनारी,
देती है अग्नि, परीक्षा ।

जब सती न इस दुनिया के;
आरोप सहन कर पाई ।
फट गया हृदय धरती का,
सीता भूमध्य समाई ।

चाप क्षमा कर देती,
जो पुरुषों के पापों को ।
वह पत्थर बनाकर सहती,
उनके ही अभिशापों को ।

शब्दों का माध्यम लेकर,
पुरुषों ने जिसे कहा है ।
उस पीड़ा को नारी ने,
जीवन में स्वयं सहा है ।

जीवन की कटुताओं से,
जब-जब नारी घबराती।
तुझ को सदैव अपने ही,
मन के समीप वह पाती।

सुख-शान्ति-विहीना नारी,
तेरी गोदी में खेली ।
तूने उसको अपनाया,
बन उसकी परम सहेली ।

नारी-गति-विधि से परिचित,
सचमुच तू अन्तर्यामी ।
तुझ से कब छिप पाया है,
कोई मन कपटी - कामी ।

जग समझ न पाता, मन से,
कैसा है तेरा नाता ।
सम्बन्ध स्वतः जीवन का,
क्यों है तुझसे जुड़ जाता ।

तेरा अनुभव करती है,
नारी मन की धड़कन में।
तुझ को अभिन्न पाती है,
वह हर एकाकी क्षण में।

रहती वह तुझे छिपाये,
निज मन की गहराई में।
वह तेरा स्वर सुनती है,
खुशियों की शहनाई में।

तुझ को आसीन सदा ही,
मन - सिंहासन पर पाती।
नारी तेरे चरणों पर,
भावना - प्रसून चढ़ाती।

बन अतिथि सदृश तू आई,
जब से उस मन-मरुथल में।
तब से वे प्यासी आँखें,
डूबी रहती हैं जल में।

फूलों सी खिलती चाहें,
काँटों सी चुभन लिये हैं।
वे हँसते अधर न जाने,
कितना विषपान किये हैं।

चुपके से चले गये सब,
आश्वासन देने वाले।
बैठी है दुखिया नारी,
कब से पीड़ायें पाले।

कुछ पाकर खो देती है,
कुछ खोकर पा जाती है।
जब जी करता रोती है,
जब जी करता गाती है।

जब पीड़ाओं के बादल,
घिरते हैं उर-अम्बर पर।
मन हलका कर देते हैं,
आँसू के जल-कण झर कर।

जब एक ओर नयनों से,
बहता है पानी खारा।
तब स्वयं प्रवाहित होती,
कविता की अविरल धारा।

दीपक की मध्यम लौ सी,
पीड़ा जब हृदय जलाती।
तब हंस - वाहिनी आकर,
चुपके - चुपके कुछ गाती।

खिलते भावों के शतदल,
गति शील लेखनी होती।
कवि की भावुकता अविरल,
शब्दों के हार पिरोती।

हर छन्द-छन्द पीड़ा मय,
हर गीत - गीत वैरागी।
विचरण करते मन-वन में,
भावों के तपसी - त्यागी।

क्या खोता क्या पाता मन,
जग की हारों-जीतों में।
अनुभूति हृदय की ढल कर,
आती कवि के गीतों में।

हो जाता मुक्त जहाँ मन,
जीवन के अनुबन्धों से।
होती पीड़ा - वैतरणी
अवतरित तभी छन्दों से।

प्रभु चरणों पर होता है,
तब अश्रु कणों से तर्पण।
धुल जाता स्वयं न जाने,
कैसे धूमिल मन-दर्पण।

पल भर डूबा भावों में,
मन अपने में खो जाता।
झुक जाता शिर श्रद्धा से,
तेरा पूजन हो जाता।

फिर जाने कभी मिलन का,
यह क्षण आये ना आये।
यह आत्म समर्पण तुझको,
जाने भाये ना भाये।

है आज व्यथा पथ-दर्शक,
है आज समर्पित जीवन।
सम्भव है फिर हो जाये,
कल यह कोमल मन, पाहन।

सम्भव है भ्रान्ति हृदय की,
फिर नश्वरता पर फूले।
यह स्नेह् - तृषित मन-पंछी,
डाले प्रमोद के झूले।

फिर से कोई आकर्षण,
सम्मोहित करले मन को।
या कोई चतुर लुटेरा,
लूटे आकर जीवन को।

प्यासा मन भटक न जाये,
इन मृग- मरीचिकाओं में।
भावुकता बहक न जाये,
इन क्षणिक भावनाओं में।

हो जाये नहीं अचानक,
फिर से सुस्थिर मन चंचल ।
बस इसी लिये पकड़े है,
नारी पीड़ा का अंचल !

यह तो भावों का विनिमय,
यह तो सौदा है मन का ।
जब तू जीवन में आई,
जग आभारी उस क्षण का ।

तू घुल मिल गई हृदय में,
जिस भाँति दूध में पानी ।
हर दुर्बलता क्षण भर में,
तूने अपनायी, जानी ।

नारी ने निज को देखा,
तेरी ही परछाँईं में।
डूबा उसका मन-मोती,
तेरी ही गहराई में।
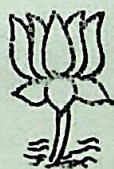
संसृति कह याद करेगी,
'नारी पीड़ा की रानी' ।
जिह्वा-जिह्वा पर होगी,
उसकी यह करुण कहानी ।

तू जहाँ - जहाँ जायेगी,
अनुसरण करेगी तेरा।
मन-वचन-कर्म से नारी,
अब वरण करेगी तेरा।

तू निश्चय ही नारी को,
पथ-भ्रष्ट न होने देगी।
उसके जीवन का मधुमय;
आदर्श न खोने देगी।

कर दिया निछावर जिसने,
तुझ पर जीवन के सुख को।
आश्चर्य भला क्या इसमें,
तूने अपनाया उसको।

निश्चय है दुखी जनों से,
सम्वन्ध न तू तोड़ेगी ।
असहाय अनाश्रित जग में,
तू उन्हें नहीं छोड़ेगी ।

मन के उद्गार करेंगे,
जब आहें बन कर क्रीड़ा ।
झलकेगी अश्रु - कणों में
नारी-जीवन की पीड़ा ।

कोई एकान्त प्रवासी,
निज मन की थकन मिटाने ।
निज पथ पर स्वतः लगेगा,
जब इन छन्दों को गाने ।

भयभीत नहीं वह होगा,
यात्रा के सूने पन से।
हो जायेगा पीड़ा का,
सम्बन्ध स्वयं ही मन से।

बैठेगा थका बटोही,
जब सघन बृक्ष के नीचे।
कुछ खोया-खोया चिन्तित,
अपनी आँखों को मींचे।

पीड़ा के छन्द सँजो कर,
कुछ मधुर गीत गायेगा।
विगता स्मृति को सम्भवतः
वह फिर से दुहरायेगा।

यों ही सदैव जीवन के,
क्रम से तू जुड़ी रहेगी।
तूने संसार सहा है,
यह दुनिया तुझे सहेगी।

जाने क्यों मन-मरुथल में,
ये नश्वर स्वप्न मचलते।
सुख के ये क्षणिक मदिर पल,
क्यों बार-बार हैं छलते।

क्यों दिखलाई देती है,
यह मृग-तृष्णा सी झाँकी।
हो जाता फिर पल भर में,
मानव-जीवन एकाकी।

हो व्यथित खोजती तुझको,
नारी धरती-अम्बर में ।
आ जाती फिर चुपके से,
तू मन के सूने घर में ।

क्यों छोड़ नहीं पाती तू,
मन के एकान्त निलय को ?
क्या तूने क्रय कर डाला,
नारी के शून्य हृदय को ?

प्रायः आते - जाते तू,
करती क्यों मन में फेरा।
जब देखो इस निर्जन में,
डाले रहती है डेरा।

तू साथ - साथ जन्मी है,
क्या साथ-साथ जायेगी ?
कब तक सह धर्मी बन कर,
नारी को अपनायेगी ?

नारी जो अपने उर पर,
निशि-दिन सहती है तुझको ।
फिर भी अपने जीवन से,
बाँधे रहती है तुझको ।

सच-सच ये आज बता दे,
उस पर ममत्व क्यों इतना ।
इतना न किसी ने चाहा,
तू उसे चाहती जितना ।

रहती है निशि-वासर तू,
उसके उर-नभ पर छाई ।
तू है अभिन्न नारी से,
जब से इस जग में आई ।

जब से उसके जीवन को,
तूने निज-स्नेह दिया है।
पल भर भी तुझे न उसने,
अपने से पृथक किया है।

जब-जब मन हुआ विरागी,
जब-जब जीवन से ऊबी।
नारी चुपके से जाकर,
तब स्नेह-सिन्धु में डूबी।

कैसे हो सके उऋण वह,
तेरे इन उपकारों से।
अपने को मुक्त करेगी,
कैसे इन आभारों से ?

डरती है कहीं अकेली,
तू छोड़ न जाये उसको।
वह सदा चाहती करना,
अन्तर में बन्दी तुझको।

वह तेरे स्वर में गाती,
तेरे ही स्वर में रोती।
अपने मन के गीतों में,
मोती सी तुझे पिरोती।

युग-युग तक अमर रहेगा,
तेरा अस्तित्व धरा में।
तुझ को जग याद करेगा,
गीतों की परम्परा में।

ये भग्न हृदय की साधें,
आँसू के साथ बहेंगी।
यों ही तेरे चरणों में,
आजीवन पड़ी रहेंगी।

जब तक गंगा में धारा,
धरती, आकाश, पवन है।
तू अमर रहेगी तब तक,
जब तक ये मानव-मन है।

छूटे चाहे नारी से,
संसृति का नश्वर डेरा।
उसके जीवन से फिर भी,
इतिहास जुड़ेगा तेरा।

प्रेस में

१. 'सुरुरेक़ल्ब' उर्दू ग़ज़ल, उर्दू तथा हिन्दी लिपि में।
२. 'एहसासात' उर्दू गज़ल उर्दू तथा हिन्दी लिपि में।
३. 'थपकी' माँ की स्मृति में लिखे गीतों का संग्रह।
४. 'बाल साहित्य'
५. 'श्रद्धा सुमन' गीत संग्रह।